Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XIV, Issue No. 2, January-2018, ISSN 2230-7540

नैतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण संरक्षण में रामचरितमानस की भूमिका

Navita Rani[1]* Dr. Govind Dwivedi[2]

[1] Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार - हमारी संस्कृति में पर्यावरण का विशेष स्थान है। हमारी शिक्षा तथा संस्कार दोनों ही का प्रकृति के साथ गहन जुड़ाव है।

धर्म जो कि हमारी संस्कृति की नीव है धर्म के बिना भारत वर्ष की कल्पना नहीं की जा सकती। धर्म सभी जीवों को एक दृष्टि से देखता है तथा प्रकृति को सजीव मानकर पूजता है। अन्य किसी धर्म में ऐसी उदारता शायद ही होगी। जहाँ पर चूहा, उल्लू, मोर, सिंह, बैल आदि को देवी देवताओं का वाहन स्वीकारा गया है। मत्स्य कच्छप, बराह वानर, गज, नृसिंह आदि को ईश्वर का अवतार माना जाता हैं एवं वृक्षों व अन्य पौधों की पूजा की जाती है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में पर्यावरण संरक्षण को अत्याधिक महत्ता दी गई है।

----------X----------

प्रस्तावना

तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में पर्यावरण के संदर्भ में वर्णन करते हुए कहा है कि उस समय पर्यावरण प्रदूषण कोई समस्या नहीं थी। पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर वन-क्षेत्र होता था। शिक्षा के केन्द्र आबादी से दूर ऋषि-मुनियों के वनों में स्थित आश्रम हुआ करते थे। श्रीरामचन्द्र जी ने भी अपने भाईयों सहित महर्षि विश्वामित्र जी से उनके आश्रम में ही शिक्षा ग्रहण की थी। समाज में इन ऋषि-मुनियों का बड़ा सम्मान था। प्रतापी राजा-महाराजा भी इन ऋषि-मुनियों के सम्मुख नतमस्तक होने में अपना सौभाग्य समझते थे। यही करण है कि जब श्रीराम को बनवास हुआ तो उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता इसी बात की हुई थी कि वन-क्षेत्र में ऋषि-मुनियों के सत्संग का लाभ प्राप्त होगा-

"मुनिगन मिलन विषेष वन, सबहिं भांति हित मोर।"

श्रीराम को भविष्य में रामराज्य की स्थापना करनी थी कि जिसमें मानव-जीवन को सुखमय बनाने हेतु मानव-प्रकृति-जीव-वनस्पति सभी में साम॰जस्य पर आधारित समवेती विकास सम्भव हो सके। रामचरित मानस में पाते है कि विभिन्न प्राकृतिक अवयवों को मात्र उपभोग की वस्तु नहीं माना गया है बल्कि सभी जीवों तथा वनस्पतियों से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। प्रकृति के अवयवों का उपभोग निषिद्व न होकर आवयकतानुसार कृतज्ञतापूर्वक उपभोग की संस्कृति प्रतिपादित की गयी है जैसे कि वृक्ष से फल तोड़कर खाना तो उचित है लेकिन वृक्ष को काटना अपराध है-

'**रीझि खीझी गुरूदेव सिख सखा सुसाहित साधु।**

तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।'

रामराज्य धरती पर अनायास स्थापित नहीं किया जा सकता है इसके लिए प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण की संस्कृति विकसित करने की आवश्यकता है जैसा कि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में वर्णित किया है कि जब श्रीरामचन्द्र जी के विवाहोपरान्त बारात लौटकर अयोध्या आती है तो अयोध्या नगरी में विविध पौधों का रोपण किया गया-

"सफल पूगफल कदलि रसाला।

रोपे बकुल कदम्ब तमाला।।"

www.ignited.in

पौधा-रोपण की संस्कृति को विकसित करने के लिए श्रीराम ने अपने वन-प्रवास के दिनों में सीता जी व लक्ष्मण जी के साथ विस्तृत पौधारोपण की ओर सकेंत करते हुए कहा कि-

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए।

कहुँ कहुँ सिएँ, कहूँ लखन लगाये।।"

शुभ अवसर पर पौधा-रोपण की संस्कृति से आज के सबसे भयावह संकट-पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति संभव है। इसीलिए रामराज्य में प्रकृति के उपहार स्वतः प्राप्त थे। तुलसीदास जी ने रामराज्य में वनों की छटा और उनसे मिलने वाले उपहारों का संजीव चित्रण करते हुए वर्णन किया है कि

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहि एक संग गज पंचानन।।

खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हिं परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

कूजहिं खग मृग नाना वृंदा। अभय चरहिं बन करंहि अनंदा।।

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अति लै चलि मकरंदा।।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं।।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतयुग के करनी।।

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनि खानि। जगदातमा भूप जग जानी।।

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

सागर निज मरजादा रहहीं। डॉ. रहिं रत्न तटन्हि नर लहहिं।।

सरसि संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि जय जेतनेहिं काजा।।

मांगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के काज।।[116]

प्रकृति का सीमित विदोहन ही मानव-जीवन के सुखमय भविष्य की गारंटी है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तु का उपयोग हमें प्रकृति से अनावष्यक छेड़छाड़ किये बिना करना चाहिए। ऐसी सामाजिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है जिसका वर्णन तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में किया है। पर्यावरण संरक्षण में रामचरितमानस की भूमिका को हम विभिन्न रूपों में देखते हैं।

नैतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण संरक्षण हेतु राजकीय उपाय

जैसा कि विदित है 'पर्यावरण' की संकल्पना अत्यन्त ही वृहद है। हमारी संस्कृति में पर्यावरण का सम्बन्ध धर्माचरण से है, अतः पर्यावरणीय चेतना व कार्यों के प्रति अरूचि, उदासीनता अथवा इनके प्रति बने नियमों का उल्लंघन 'अधर्म' की श्रेणी में आता है। वैदिक ग्रन्थों में 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' अर्थात् किसी भी जीव की हत्या करना निषिध था। 'अहिंसा' पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण के प्रति एक दृष्टिकोण ही है। प्रकृति में उपस्थित वृक्षों, पर्वतों, नदियों आदि से बने प्राकृतिक पर्यावरण के अतिरिक्त सामाजिक पर्यावरण की निर्मिति भी की गई। जिसमें विभिन्न नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के माध्यम से 'राज्य' तथा 'समाज' का विकास सम्भव होता है। इस 'मूल्यबोध' को बनाए रखना समाज के साथ 'राज्य' का भी कत्तव्य होता है। संस्कृत साहित्य में वैदिक युग से ही नीति परक उपदेशों की परम्परा चली आ रही है, जिनमें शुक्र नीति, चाणक्य नीति, विदुर नीति, हितोपदेश आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। 'नीति' का प्रयोग मनुष्य में 'नैतिकता' के विकास के लिए किया जाता है और इससे 'नैतिक पर्यावरण' भी बनता है। समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग, जाति; राष्ट्र को एक-दूसरे के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए; इसके लिए बनाए गए नियमों से ही नैतिक पर्यावरण का संरक्षण किया जाता है। भारत में संस्कार, पुरूषार्थ, कर्मकाण्ड आदि का निर्माण भी सांस्कृतिक पर्यावरण के संरक्षण के लिए ही हुआ है। इस खण्ड में हम नैतिक व सांस्कृतिक संरक्षण के राजकीय प्रयासों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

नैतिक संरक्षण

नैतिकता वह गुण है जिससे मनुष्य में समस्त क्रिया-कलाप व व्यक्तित्व प्रभावित होता है। यह कत्तव्य की आंतरिक भावना होती है, जो विवेक के बल पर संचालित होती है। यही विवेक उचित-अनुचित का निर्णय करने में सहायक होता है। जीवन में नैतिक मूल्यों को आवश्यक माना जाता है। नैतिक मूल्य के कारण ही मानव पशुत्व आचरण से इतर 'मानवीय प्राणी' (मानवीय आचरण युक्त) कहलाता है।

मनुष्यों द्वारा अपनाए जाने वाले नैतिक मूल्य समाज के विकास के साथ बदलते हैं, अतः एक ही समाज में विभिन्न युगों में नैतिक मूल्य बदल जाते हैं। इस प्रकार नीति मनुष्य के जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करती है।

[116] उत्तरकांड, दो. 22 के अग्रिम चै. 1-5, एवं दो. 23

www.ignited.in

नैतिकता हमें धर्म, अनुशासन, आचरण, कानून आदि से जोड़ती है। चाणक्य भी नीति शास्त्र में लिखते हैं कि- 'सुखस्य मूलं धर्मः।' सुख का मूल आधार धर्म है। वास्तव में देखा जाए तो धर्म एवं कानून का निर्माण ही नैतिक मूल्यों के संरक्षण हेतु किया गया है। 'मानस' के श्रीराम तो नैतिकतामय जीवन के आदर्श प्रतीक स्वयं हैं।

भारतीय साहित्य परम्परा व जीवन में नैतिक मूल्य की आवश्यकता एवं महत्त्व को केन्द्र में रखा गया है। नैतिकता से मनुष्य के साथ-साथ राष्ट्र का उत्थान भी होता हैं। जो समाज नैतिकता से विमुख हो जाता है, उसकी अवनति तय है। 'मानस' में 'रावण' की गति द्वारा इसे समझा जा सकता है। इस उपखण्ड में हम नैतिक संरक्षण के अन्तर्गत न्याय, त्रिवर्ग, धर्म, प्रजा की रक्षा हेतु राजा के कत्र्तव्य, उपकार, दान, दया, क्षमा आदि पर चर्चा करेंगे।

हिन्दू धर्म में नैतिकता के अन्तर्गत दान, उपकार, दया, क्षमा, तय आदि का विशेष महत्त्व है। इन कार्यों को धार्मिकता से जोड़ दिया गया ताकि समाज ईश्वरोपदेश मानकर इन कत्र्तव्यों को पूरा करे। यह जिम्मेदारी समाज की ही नहीं अपितु राज्य व शासक की भी होती थी। 'मानस' में तुलसीदास जी ने नैतिक पर्यावरण की पराकाष्ठा चित्रित की है तथा इन दान, क्षमा, दया आदि कार्यों द्वारा उसका संरक्षण करने की महत्ता को भी प्रदर्शित किया है।

न्याय- प्राचीन समय में भी भारतीय राज व्यवस्था में मनुष्य तथा समाज को व्यवस्थित और नियंत्रित रखने के लिए अनेक प्रथाओं, परम्पराओं तथा विधानों को सृजित किया था। अतः इसके विरूद्ध कार्य करने वाले के लिए दण्डविधान भी था। श्रीमद्भागवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि-

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाण ते कार्याकार्यव्यस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।'[117]

अर्थात् हे अर्जुन। कत्र्तव्य-अकत्र्तव्य के निर्णय करने में तुम्हारे लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं, शास्त्रों के कहे गये कर्म को तुम्हें इस संसार में करना चाहिए। अतः यदि शास्त्र-विरुद्ध कार्य अथवा अनैतिक कार्य का 'न्याय' द्वारा ही विनाश किया जायेगा तथा जिससे पुनः धर्म की स्थापना होगी। इस दृष्टि से धर्मशास्त्रों का निर्माण न्याय, दण्ड, विधि के नियमों पर ही किया गया है।

'मानस' में बालि-वध के प्रसंग में देखें तो श्रीराम द्वारा बालि को छिपकर मारे जाने पर बालि प्रश्न करता है कि-

"धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाई।।

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।"[118]

"अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।"[119]

अर्थात् हे मूर्ख। सुनो जो छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या-ये चारों समान हैं। इनको जो बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता है।

बालि ने अपने अनुज सुग्रीव की पत्नी को छीन लिया था,अतः बालि को छिपकर मारने में भी कोई अपराध नहीं था, अपितु यह सुग्रीव व उनकी पत्नी के साथ किया गया 'न्याय' था। बालि ने नीति-नियमों, परम्पराओं के विरूद्ध कार्य किया, अधर्म किया। इसलिए वह 'दण्ड' का भागी भी बना।

रामशरण शर्मा लिखते हैं कि "राज्य की अखण्डता और एकता बनाए रखने के लिए प्लेटो राज्यधर्म का विधान करता है, जिसका मतलब यह हुआ कि कुछ धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं को सभी वर्गों के लोगों द्वारा आधारित करवाना चाहिए। इनका उल्लंघन करने वालों के लिए कारावास या मृत्युदंड तक का भी विधान किया गया है।"[120] जिससे 'न्याय-व्यवस्था' बनी रहें तथा समाज नीति का निरन्तर पालन करता करें। राम 'रावण' का वध कर न्याय, नीति, धर्म की ही स्थापना करते हैं। गोस्वामीजी रावण वध के बाद इन्द्र द्वारा राम की स्तुति करते हुए कहते हैं कि-

'परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट।।

अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल।।'[121]

अर्थात् वह दूसरों से द्रोह करने में तत्पर और अत्यन्त दुष्ट था। उस पापी ने वैसा ही फल पाया। स्पष्ट है कि यद्यपि वर्तमान समय में विध व कानूनी प्रक्रियायें अत्यन्त जटिल हो गई हैं

[117] श्रीमद्भगवद्गीता 16/24

[118] रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड,दो. 9, चै. 3

[119] रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड, दो. 9, चै. 4

[120] रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृष्ठ 256

[121] रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दो. 113, चै. 5

फिर इन प्रक्रियाओं में धन व समय अत्यधिक लगता है जिससे न्यायार्थी को कई बार अपने सम्पूर्ण जीवन में भी न्याय नहीं मिल पाता।

भारत में आए अनेक विदेशी शासन प्रणाली से ही हमारी न्याय-व्यवस्था भी प्रभावित हुई है। आज स्थिति विकट है। 'मानस' व भारतीय धर्मग्रन्थों के माध्यम से समझा जा सकता है कि राज्यव्यवस्था और न्यायव्यवस्था के साथ ही समाज व व्यक्ति में व्याप्त नैतिक आचरण से ही एक सभ्य, संस्कारी, शिक्षित व अपराध मुक्त सामाजिक-सांस्कृतिक-नैतिक पर्यावरण निर्मित हो सकता है।

त्रिवर्ग का सम्पादन-

भारतीय जीवन-दर्शन में भौतिक तथा आध्यात्मिक सुख दोनों का महत्त्व है तथा दोनों के समन्वित रूप से ही व्यक्ति तथा समाज का उत्कर्ष सम्भव है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में इसी कारण 'आश्रम-व्यवस्था की निर्मिति की गई थी जिसमें लौकिक तथा पारलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु 'पुरूषार्थ' को आधार माना गया है। आश्रम-व्यवस्था में वह भौतिक पदार्थों, सुखों व भोग करते हुए अंतिम में 'परमात्मा प्राप्ति' की ओर उन्मुख होता है। यह चार पुरूषार्थ 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' और 'मोक्ष' हैं। इन्हें 'चतुर्वर्ग' कहते हैं। बाद में मोक्ष को अंतिम मानकर तीन पुरूषार्थ 'धर्म; अर्थ; 'काम' पर विशेष बल दिया गया। जिसे ही 'त्रिवर्ग' कहा गया। इस प्रकार मनुष्य धर्म, अर्थ, काम का अनुसरण करता है; जिससे एक 'आदर्श समाज' बनता है।

तुलसीदास बालकाण्ड में इसे वर्णित किया है कि-

"**अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।**

नव रस जय जोग बिरागा। ते सब जलचर चारू तड़ागा।।"[122]

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार के कहना, काव्य के नौ रस, जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग-ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं। तुलसीदास ने मनुष्य जीवन में ही 'पुरूषार्थ' के महत्त्व को अंकित नहीं किया बल्कि यह भी बताया कि काव्य को भी इनका (पुरूषार्थ) अनुसरण करने वाला तथा इनकी ओर प्रेरित किए जाने वाला होना चाहिए।

तुलसीदास अपनी श्रीराम के प्रति भक्ति-भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराम के प्रभाव से चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) भी मुट्ठी में आ जाते हैं।[123] राज्य का भी यह कत्तव्य होता है कि इन चारों को प्राप्त करने में प्रजा की सहायता करें। गोस्वामी जी कहते हैं कि राजा के पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किए हों।[124] राजा के लिए भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अत्यन्त आवश्यक माना गया है। अतः तुलसीदास भी 'मानस' में चित्रित करते हैं कि 'श्रीराम-सीता के विवाह के पश्चात् सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर अवधेश नरेश दशरथजी ऐसे आनन्दित हैं, मानो वे राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं साहित चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पा गए हों-

'**मुदित अवधपति सकल' सुत बधुन्ह समेत निहारि।**

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।'[125]

हिन्दू धर्म में मानव-जीवन का पुरूषार्थ ही उद्देश्य अथवा लक्ष्य माना जाता है। 'तुलसीदास' भी पुरूषार्थ (चतुर्वर्ग) अथवा त्रिवर्ग को अनेक स्थानों पर सम्पादित होते हुए अभिव्यक्त किया है और अंत में 'श्रीराम' के चरणों में ही मोक्ष या परमानंद की अवस्था मानी है।

प्रजा की रक्षा-

राज्य के गठन के साथ ही राज्य के सर्वोच्च अधिकारी राजा का कत्तव्य प्रजा-हित में कार्य करना होता है। जो शासक अपनी प्रजा की रक्षा न कर सके, उसे अयोग्य माना जाता है। इतिहासकार रामशरण शर्मा लिखते हैं कि "**चूंकि प्राचीन परम्पराओं में शासक या दंड के अभाव को संपत्ति, परिवार और वर्णव्यवस्था के लिए बहुत बड़ा खतरा समझा गया है, इसलिए राज्य इनकी रक्षा के निमित्त ही उदित हुआ।**"[126] वह उनकी रक्षा करता था तथा इसके बदले में वह प्रजा से कर प्राप्त करता था। मानस के बालकाण्ड के पसंग में ऋषि विश्वामित्र जो राक्षसों के कारण यज्ञादि धर्मकार्य नहीं कर पा रहे थें, राजा दशरथ ने राम को मांगने आते हैं, ताकि वो उनकी रक्षा कर सकें। श्रीराम मुनि विश्वामित्र के साथ जाकर मारीचि आदि राक्षसों का नाश करते हैं और मुनियों से निडर होकर यज्ञादि करने को कहते हैं। स्वयं राम यज्ञ की रखवाली करते

[122] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 37, चै. 5

[123] करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कुमारी।।
रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 315, चै. 1

[124] नृप समीप सेहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी।।
रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 309, चै. 1

[125] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 325 (छं)

[126] रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, पृष्ठ-70.

www.ignited.in

हैं।[127] श्रीराम वनवास जाने के पश्चात् भरत भी राजपाठ का त्याग करने लगते हैं तब ऋषि वशिष्ट भरत को राजा का धर्म स्मरण कराते हुए कहते हैं कि आपको व्यर्थ चिंता करने की आवश्यकता नहीं है और किसी को दोष देने से कोई लाभ नहीं है अपितु "चिंता वह राजा करें, जिसने नीति का पालन नहीं किया हो तथा जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी न हों-

सोचिउ नृपति जो नीति न जाना।

जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।'[128]

अतः भरत प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों का दुःख हरो।[129] इसके बाद ही वैराग्य का ध्यान छोड़कर भरत अयोध्याजी का राजकाज सँभालते हैं। जिसके कारण अयोध्या के नगरवासी सुखपूर्वक रहने लगते हैं।[130]

प्रजा को धर्म में लगाना-

राजा का कत्तव्य प्रजा की रक्षा करने के साथ ही उसे धर्म की ओर प्रेरित करना भी था। गोस्वामीजी ने अनेक बार उल्लेख किया है कि राजा के राज्य अथवा नगरी में सभी स्त्री-पुरूष धर्म का पालन करते हैं। उत्तराकाण्ड में रामराज्य की स्थापना हो जाने के बाद 'सभी दम्भरहित हो जाते हैं, धर्मपरायण और पुण्यात्मा हो जाते हैं। पुरूष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी जानी हैं। सभी कृतज्ञ हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है-

'**सब निर्दंभ धर्मरत पुनी।**

नर अरु नारि चतुर सब गुनी।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।

सब कृतग्य नहिं कपट समानी।।'[131]

वास्तव में सम्पूर्ण 'मानस' से ही अयोध्या के राजा दशरथ व राम द्वारा जनता को धर्म हित के कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया गया है।

उपकार, दान, दया, क्षमा, धर्म आदि

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन समय से ही धर्म-प्रधान देश रहा है। यहाँ धर्म की अत्यन्त व्यापक एवं विशद व्याख्या की गई है, इस प्रकार स्पष्ट होता है कि धर्म लगभग जीवन के हर एक कार्यों में समाविष्ट है। **"धर्म भारतीय जीवन के प्रत्येक स्फुरण में इतना घुलमिल गया था कि दोनों के बीच कोई विभाजन सम्भव ही न था। भारतीय दृष्टि में धर्म जीवन का आदर्श था और जीवन धर्म का व्यवहार।"**[132] धर्म के माध्यम से सत्-असत् के भेद, न्यायिक क्रियाओं, नैतिक सिद्धान्तों को समझकर उसे अपने जीवन में लागू किया जा सकता है। महाभारत में 'धर्म' के विषय में बताते हुए यह कहा गया है कि धर्म वही है जिससे किसी दूसरे को कष्ट न पहुँचे। बल्कि लाभ हो। जो धर्म का मात्र अपने लिए ही अंधानुकरण करता है, वह अंधे के समान सूर्य की प्रभा से अछूता रहता है।[133]

अतः धर्म का भारत में उसके अंग्रेजी रूपान्तर श्त्मसपहपवदश् के अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता है। एक पुत्र के लिए उसके माता-पिता की आज्ञा का पालन करना ही 'धर्म' है। अयोध्याकाण्ड में आता कौशल्या श्रीराम के लिए कहती हैं-

'**सरल सुभाउ राम महतारी।**

बोली बचन धीर धरि आरी।

तात जाऊँ बलि कीन्हेहु नीका।

पितु आयसु सब धरम के टीका।।'[134]

अर्थात् हे माता ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों में शिरोमणि धर्म

[127] पात कहा मुनि सन रघुराई।
निर्भय जग्य करहु तुम जाई।
होम करे लागे मुनि झारी। आप रहे मख की रखवारी।।
रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 210, चै. 1

[128] प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू।
रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 177, चै. 3

[129] प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू।
रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 177, चै. 3

[130] नगर नारि नर गुर सिख मानी।
बसे सुखेन राम राजधानी।
रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 322, चै. 4

[131] रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो. 21, चै. 4

[132] विमल चन्द्र पाण्डेय, भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. सं. 190

[133] कर्षणार्थं हि यो धर्मों मित्राणमात्मनस्तथा।
व्यसनं नाम तद् राजन न धर्मः स कुधर्म तत्।।
यस्य धर्मो हि धर्मार्थं क्लेशभाङ् न स पण्डितः।
न स धर्मस्य वेदार्थ सूर्यस्यान्धः प्रभावित।।' -महाभारत, वनपर्व, 33/21-3.

[134] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड,दो. 55, चै. 4

है और जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसके मुट्ठी में रहते हैं-

'चारि पदारथ करतल ताकें।

प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।'[135]

भारत तथा हिन्दू धर्म में 'दान' की बड़ी महत्ता है। 'दान' का अर्थ है कि जब आप अन्य प्राणियों को अपनी सुखी से अन्न-धन-वस्त्र आदि देते हैं। हिन्दू धर्म में प्रत्येक शुभ कार्य पर दान देने की प्रथा है। 'दान' की परम्परा के पीछे यह तथ्य है कि हम इस मायारूपी संसार में आकर अन्न-धन-राज्य-संपत्ति इन सबसे लोभ व मोह करते हुए, इनका संग्रह कर देना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु हम भूल जाते हैं कि वास्तव में संसार से परे जो चीज या वस्तु जा सकती है, वह यह भौतिक वस्तुयें नहीं है। अतः 'दान' कर हम दूसरों के साथ परोपकार करने के साथ ही अपना उस संपत्ति के प्रति मोह का भी त्याग करते हैं। जिससे जीवन का चरम लक्ष्य 'मोक्ष' प्राप्त किया जा सकता है। 'मानस' में गोस्वामीजी ने भी हर एक शुभ कार्य करने के बाद विशेष रूप से ब्राह्मणों, मुनियों को राजा द्वारा दान देने की परम्परा को वर्णित किया है। श्रीराम व तीनों कुमारों के जन्म पर, राम के विवाह की सूचना पर, श्रीराम के विवाह के पश्चात् दशरथ व कौशल्या द्वारा, श्रीराम को युवराज पद मिलने पर कौशल्या द्वारा, राजा दशरथ की मृत्यु पर भरत द्वारा आदि अनेक प्रसंगों में गोस्वामीजी ने 'दान' की महिमा का गुणगान किया है। ऐसा ही एक प्रसंग है जब श्रीराम-सीता का विवाह सम्पन्न होकर, वे अयोध्या नगरी आते हैं तब वशिष्ठजी उन्हें वेदों और लोक में प्रचलित विधि का ज्ञान कराते हैं और तब रानियाँ (दशरथ की पत्नियाँ) ब्राह्ममणों के चरण धोकर, सबको स्नान कराती हैं और राजा दशरथ उनका भलीभांति पूजन करके भोजन कराते हैं। तत्पश्चात् आदर, दान और प्रेम से पुष्ट हुए वे सभी ब्राह्ममण मन से आशीर्वाद देते हैं-

'पाय परवारि सकल अन्हवाए। पूजि भली विधि भूप जेवाँए।।

आदर दान प्रेम परिपोषे। देत असीत चले मन तोषे।।'[136]

दया उपकार और क्षमा का ही हिन्दू धर्म के साथ ही बौद्ध, जैन धर्म में अत्याधिक महत्त्व है। अनेक लोककथाओं में भी इसके महत्त्व पर चर्चा की गई है। हिन्दू धर्म तो सदैव से ही अहिंसा मूलक समाज रहा है। अतः हमारे समाज में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। माना जाता है कि जीवों पर दया करने वाले से ईश्वर सदैव प्रसन्न रहते हैं। 'मानस' में राम कृपालु होने के साथ-साथ दयालु भी हैं। 'मानस' में राम कृपालु होने के साथ-साथ दयालु भी हैं। उनके लिए ही अनेक स्थान पर 'दीनदयाल' शब्द का प्रयोग किया गया है। श्रीराम ने 'रावण' पर दया कर उसे अपने धाम में स्थान दिया। श्रीराम की दयालुता का एक प्रसंग तब है जब उनके चरणों से अहिल्या का उद्धार होता है, तब गोस्वामी जी कहते हैं कि-

'अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।

तुलसीदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।।'[137]

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनबन्धु और बिना ही कारण दया करने वाले हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि हे मन ! तू कपट-जंजाल छोड़कर उन्हीं का भजन कर।

'क्षमा' हिन्दू धर्म के साथ ही अनेक धर्मों में परोपकार का माध्यम माना जाता है। क्षमा की प्रक्रिया में हम अपने 'अहम्' का त्याग कर उससे ऊपर उठते हैं, जिससे हम अधिक सुख पाते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है। यदि हम किसी गलती के लिए क्षमा नहीं करेंगे तो स्वयं उस पीड़ा से ग्रसित रहेंगे। अतः 'क्षमा' धार्मिकता के साथ ही व्यक्तित्व को विकास भी करता है। 'क्षमा' भी एक प्रकार का दान है। श्रीराम ने 'रावण' के कुकत्यों के बाद उसका वध किया किन्तु इसके बाद ही वे उसे क्षमा करके परमधाम भेज देते हैं और विभिषण से शोक त्यागकर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का आग्रह करते हैं-

'कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका।

करहु क्रिया परिहरि सब सोका।।'[138]

श्रीराम समुद्र द्वारा क्षमा मांगने पर उसे क्षमा प्रदान करते हैं। यह तो 'ईश्वरीय व राजा राम' की क्षमा, दया, दान की व्याख्या हुई है। मानवीय रूप व गुण में 'राम' हनुमान द्वारा सीता का संदेश लाने पर उनका उपकार मानते हुए कहते हैं कि-

'सुनु कपि तीहि समान उपकारी।

नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।

प्रति उपकार करौं का तोरा।

सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।'[139]

[135] रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 46, चै. 1

[136] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 352, चै. 2

[137] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 299

[138] रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दो. 105, चै. 4

[139] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दो. 32, चै. 3

www.ignited.in

अर्थात् हे हनुमान ! सुनो, तुम्हारे समान मेरा कोई उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदले में उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

सब पर उपकार करने वाले ईश्वर जब मानवीय स्वरूप में पृथ्वी पर अवतरित हैं, तो भी वह हनुमान द्वारा किए गए उपकार का ऋण चुकाने में असम्भव है। जीवन में इन सब नैतिक आचरणों के प्रयोग से ही मानव अपनी तुच्छ वृत्ति छोड़कर शान्ति, सुख, आनन्द अथवा सच्चिदानंद को प्राप्त कर सकता है। 'मानस' में तुलसी ने भी मानव, पशु-पक्षी, वनस्पतियों, वृक्षों आदि अनेक साधनों से हिन्दू परम्परा में इन आचरणों को ग्रहण करने का अन्यत्र वर्णन किया है जिससे ही परमब्रह्म 'श्रीराम' की प्राप्ति सम्भव है, स्वयं यह गुण ईश्वर द्वारा भी ग्रहण किए गए हैं।

संस्कृतिक संरक्षण

भारतीय संस्कृति में 'वसुदैव कुटुम्बकम्' की भावना प्राचीन-काल से स्थापित रही है। "**भारतीय संस्कृति की यह अवधारणा है कि मनुष्य प्रकृति की श्रेष्ठतम् कृति है, अतः यदि प्रकृति का पोषण होता रहा तो उसके माध्यम से विकसित व्यक्तित्व संस्कृति का रक्षण करने में सक्षम हो सकेंगे तथा संस्कृति के प्रमुख उत्पादन जिनमें कला, साहित्य, संगीत एवं नैतिक मूल्य अक्षुण्ण रह सकते हैं।**"[140]

सांस्कृतिक संरक्षण की कितनी अधिक आवश्यकता है, इसे हम वर्तमान के संदर्भ से भी समझ सकते हैं। संस्कृति ही हमें हमारे मूल अस्तित्व से जोड़ती है। अतः इसका संरक्षण करना आवश्यक भी है। आज विश्व के लगभग हर संविधान में संस्कृति संरक्षण और संवर्द्धन के अधिकार का उल्लेख मिलता है। भारतीय संविधान में भी सांस्कृतिक चेतना संवर्द्धन व संरक्षण पर प्रमुखता से उल्लेखित है। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा सांस्कृतिक सम्पदा के संरक्षण के लिए 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक संपदा संरक्षण अनुसंधान प्रयोगशाला' नामक वैज्ञानिक संस्था का भी निर्माण किया गया है। यह सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता की ओर ही इंगित करती है।

भारतीय चिंतन परम्परा में 'संस्कृति' सदैव से ही एक आवश्यक घटक रहा है। संस्कृति से कटे हुए राष्ट्र को दिशा देने में असफल भी रहते हैं। अतः राष्ट्र (राज्य) की जिम्मेदारी लोगों में सांस्कृतिक चेतना को बनाए रखने के लिए जागरूक करने की होती है। 'मानस' में तुलसीदासजी ने भारतीय संस्कृति के विविध मान्यताओं, कलाओं, क्रिया-कलापों को वर्णित किया है।

इस्लाम के प्रवेश के कारण जब भारतीय (हिन्दू) संस्कृति संकट की अवस्था में थी, तब गोस्वामीजी ने 'मानस की रचना कर सामान्य जनों में उनके सांस्कृतिक महत्त्व और चेतना को पुनर्जिवित करने का सफल प्रयास किया था।

सामाजिक समानता-

वैदिक काल में हमें वर्ण-व्यवस्था देखने को मिलती है। जिसमें समाज चार वर्णों ब्राह्ममण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभाजित था। इन सबके कत्तव्य विभाजित थे। समाज में सबसे निम्न स्थान शूद्रों को प्राप्त था। ज्ञातव्य है कि यह व्यवस्था प्रारम्भ में मनुष्यों के कर्म पर आधारित थी किन्तु पूर्व वैदिक काल तक आते-आते वर्ण-व्यवस्था जनन पर आधारित हो गई। जिसके विरोध में अनेक धर्मों का उदय हुआ यथा बौद्ध एवं जैन धर्म। किन्तु राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवर्तनों के मध्य सामाजिक जीवन जटिल बनता गया और 'जाति-व्यवस्था' का निर्माण हो गया। भारत में आने वाली अनेक संस्कृतियों के कारण जातीय बहुरूपता विकसित होती है। और सामाजिक-राजनीतिक वर्चस्व की जटिल प्रक्रिया में शूद्रों को निचले स्तर पर रखकर उन्हें 'अस्पृश्य' माना गया। जो जन्म आधारित थी।

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-काल में यह समस्या बनी हुई थी जिस कारण राष्ट्र की एकता भी बिखर गई थी। स्वयं को उच्च जाति कहने वाले 'ब्राह्मणों' की नैतिकता पर तुलसी ने ही प्रश्न खड़े किए। वे कहते हैं कि- 'विप्र निरक्षर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।।' किन्तु तुलसी पर लगातार वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था को मानने के आरोप लगाए जा रहे हैं। यद्यपि यह सत्य है कि तुलसी वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे किन्तु उनकी वर्ण-व्यवस्था में अस्पृश्यता नहीं थी वरन् चारों वर्णों का एक ही घाट पर स्नान करना था।[141]

सुन्दरकाण्ड के एक प्रसंग में जब हनुमान सीता को खोजते हुए लंका पहुँचते हैं तो अशोक वन में सीता उनसे प्रश्न करती हैं कि नर (राम) और वानर (हनुमान) का संगम कैसे हुआ ?

'नर वानरहि' संग कहु कैसें।

[140] बी.बी.एस. कपूर, भारतीय संस्कृति, धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण, पृ. 14

[141] राजघाट सब विधि सुन्दर वर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नरा। रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो. 29 चै. 2

कही कथा भइ संगति जैसे।।'[142]

यह उस समय आश्चर्य की ही बात थी मनुष्यों में मनुष्य के लिए जब विभाजक रेखा बनी हुई थी, ऐसे में रीछ-बन्दर से मनुष्य कैसे संयोग किया। विश्वनाथ त्रिपाठी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि ये बन्दर-भालू-रीछ उपेक्षित जाति के प्रतीक हैं। उनके अनुसार "बन्दर-भालू सर्वहारा के भी प्रतीक बन सकते हैं, जिनके पास लड़ने के लिए केवल नाखून और दाँत हैं, जो समाज में प्रतिष्ठित नहीं है, जंगल में रहते हैं। राम के सबसे निकट और आत्मीय कौन लोग हैं- पति-परित्यक्ता अहिल्या, जनकपुर के सामान्य बालक-राजकुमार नहीं, अयोध्या के सामान्य नागरिक, वन-मार्ग में मिलने वाले ग्रामीण, केवट, शबरी, बन्दर-भालू,राजा सुग्रीव और युवराज अंगद से कहीं अधिक प्रिय और आत्मीय हनुमान, पक्षिराज गुरूड़ नहीं, पक्षियों में भी निम्न गीध और काकभुशुंडि।"[143]

यह सत्य है कि तुलसी के यहाँ सामाजिक-समानता की स्थिति इतनी वैधानिक नहीं है, जितनी की वर्तमान समय में। फिर भी तुलसीदास ने नैतिक कत्तव्यों पर सामाजिक समानता का ढांचा खड़ा किया था। वे अपने समकालीन कवियों का भांति केवल इस विकृत-व्यवस्था का विरोध नहीं करते हैं अपितु इस विकृत-व्यवस्था में सुधार करने के लए विकल्प व समाधान भी तलाशते हैं।

विविध कलाओं का संरक्षण-

'मानस' में वर्णित विविध कलाओं पर हमने पिछले अध्यायों में भी चर्चा की है। 'मानस' में विविध कलाओं व कलाकारों को राजा व राज्य द्वारा प्रश्रय प्रदान किया गया है। जिसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण 'जनकपुर' में देखने को मिलता है। जिसमें सीताजी के लिए मण्डप बनवाने के लिए अनेक कारीगरों को बुलाया जाता है। इस मण्डप की व्याख्या तुलसी ने अति सुन्दर की है। जिसके एक चैपाई में वे कहते हैं कि-

"तेहिं के रचि पचि बंध बनाए।

विच बिच मुकुता दाम सुहाए।।

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।

चीरि कोरि पचि रचे सरोज।।"[144]

अर्थात् मण्डप में नाग बेलि रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन (बाँधने के लिए रस्सी) बनाए गए। बीच-बीच में मोतियों की सुन्दर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे, इन रत्नों को चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके कमल बनाए गए हैं।

इसके अतिरिक्त शिल्पकारों द्वारा मूर्तियों को गढ़कर निकालने की प्रक्रिया का भी वे वर्णन करते हैं-

'सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ीं। मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं।।'[145]

अनेक स्थान पर परोक्ष रूप में वस्त्रों को सिलने-काढ़ने वाले कारीगरों का उल्लेख है। जानकी विवाह में ऐसे सुन्दर और उत्तम बंदनवार बनाये गए हैं मानो कामदेव ने कंदे सजाए हों। अनेकों मंगल कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, परदे और चेंवर बनाए गए हैं-

'रचे रूचिर बर बंदनिवारे।

मनहुँ मनोभवँ पांद सँवारे।।

मंगल कलस अनेक बनाए।

ध्वज पताक पट चमर सुहाए।।[146]

अयोध्या से बारात जाते समय उसमें मगध, सूत, भाट विविध लोग है, जो राजा की प्रशंसा में गीत गाते थे। ये राजा के आश्रित होते थे। राम-सीता विवाह में बारात जनकपुर पहुँचने पर यह दशरथ का सुयश गाते हैं-

'सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं।।'[147]

राम की बारात में पट्टेबाज, विदूषक, नट आदि कलाओं को दिखाने वाले भी सम्मिलित हैं-

'घंट घंटि धुनि व रनि न जाहीं।

सख करहिं पाइक फहराहीं।।

करहिं बिदूषक कौतुक नाना।

हास कुसल कल गान सुजाना।।'[148]

[142] रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड, दो. 13, चै. 6
[143] विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृष्ठ सं. 24-25
[144] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 288, चै. 2
[145] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 288, चै. 3
[146] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 289, चै. 1
[147] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 327, छं. (1)

www.ignited.in

घोड़ों के करतब दिखाने वाले नगाड़े और मृदंग के शब्द सुनकर उन्हीं के अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे ताल के बंधन से जरा भी डिगते नहीं हैं-

'तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।

नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान।'[149]

इसके अतिरिक्त वस्त्र-आभूषण कला, संगीत व वाद्य मंत्रों को बजाने वाले, पाक-कला के जानकारों को भी राज्य व राजा द्वारा प्रश्रय दिया जाता था। जिसका उल्लेख तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' ने किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कामिल बुल्के, राम कथा, प्रसंग 197
2. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 39, चै. 6
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृष्ठ सं. 16
4. डॉ. रामनाथ शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएं और संस्कृति, पृष्ठ सं. 29
5. ऋग्वेद 10/90/12
6. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दो. 20
7. श्रीमद्भागवद् गीता, अध्याय 4, श्लोक 13
8. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दो. 29, चै. 2
9. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दो. 87 (क)
10. डॉ. नगेन्द्र, तुलसी संदर्भ, प्र. 21 (वाणी प्रकाशन)
11. डॉ. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ सं 369 (2)
12. आचार्य, रामचन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, पृष्ठ सं. 67-68
13. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दो. 5, छं.1
14. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 1, चै. 3
15. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 3, चै. 3
16. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दो. 4, चै. 5

[148] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 302, चै. 4

[149] रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 302

आधार ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता, टीकाकार कृष्णकूपा श्रीमूर्ति, भक्ति वेदांत बुक ट्रस्ट हरे कृष्ण धाम जुहू, मुम्बई प्रकाशन
2. श्री राम चरिमानस, गोस्वामी तुलसीदास

सहायक ग्रन्थ

1. डॉ. रामनाथ शर्मा एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
2. फादर कामिल बुल्के, अंग्रेजी हिन्दी कोष नई दिल्ली 1982
3. फादर कामिल बुल्के, रामकथा, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशित छटा संशोधन संस्करण, 1999
4. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली पहला संस्करण, 1974
5. राजेन्द्र कुमार जुमनानी, पर्यावरण संरक्षण विधि एवं न्यायिक संकिता क्लासिकल कम्पनी, नई दिल्ली प्रथम सस्करण सन 2002
6. विद्यानिवास मिश्र, रामायण का काव्यमर्म, प्रभात पब्लिकेशन, प्रभात प्रकाशन आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001

पत्रिका

आयुर्वेद का प्राण, शान्तिकुंज हरिद्वार

Corresponding Author

Navita Rani*

Research Scholar, OPJS University, Churu, Rajasthan